Journal Homepage: -www.journalijar.com

INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH (IJAR)

Article DOI:10.21474/IJAR01/22653
DOI URL: http://dx.doi.org/10.21474/IJAR01/22653

ISSN (O): 2320-5407
ISSN (P): 3107-4928

RESEARCH ARTICLE

अग्निपुराण, वामनपुराण,एवं श्रीमद्भागवतमहापुराण में चातुर्वर्ण्य हेतु दायभाग (एक दा िनक वि लेशण)

प्रीति भार्मा

1., सहायक प्राध्यापक, द िन ाास्त्र विभाग, कोल्हान वि वविद्यालय, चाईबासा, झारखण्ड

Manuscript Info

Manuscript History
Received: 12 November 2025
Final Accepted: 14 December 2025
Published: January 2026

Key words:-
वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में मिताक्षरा एवं दायभाग, पौराणिक दृश्टि से दायभाग अर्थात सम्पत्ति विभाजन के नियमों का वि ोश रूप से वर्णन, स्त्रीधन एवं वैदिक काल में सम्पत्ति विभाजन सम्बन्धि स्त्रियों की स्थिति, सम्पत्ति के अनधिकारी, सम्पत्ति अर्जन के स्रोत, सम्पत्ति विभाजन हेतु प्रमाण।

Abstract

प्रस्तुत भाोधालेख वैदिक साहित्य में सम्पत्ति विभाजन की पृश्ठभूमि के साथ वि ोशतः पौराणिक साहित्य में सम्पत्ति की एक दा िनक दृश्टि प्रदान करता है, जिसमें सम्पत्ति विभाजन संबंधी हिन्दू विधि की मुख्यतः दो भााखाओं मिताक्षरा और दायभाग में से दायभाग के अनुसार समाज के सभी वर्गों को समायोजित करते हुए तत्कालिन सम्पत्ति विभाजन सम्बन्धी नियमों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है, जिसमें पितृ प्रधान कुटुम्ब और स्त्रीधन सम्बन्धि नियम वि ोश है। इस अध्ययन से स्पश्टहोता है कि कुछ पुराण दायभाग का यथावत् अनुसरण करते हैं और कुछ इसमें श्रम एवं दाय सम्बन्धि साम्यवादी दृश्टि प्रदान करते हुए यह संदे ा देने का प्रयास करते हैं कि व्यक्ति की आय की समस्त रा ि ा पर अधिकार न होकर केवल उसके उतने ही भाग पर अधिकार है जितने से उसका भरण–पोशण हो सके, भोशपर अन्य का अधिकार है ताकि सबको समान रूप से संसाधन उपलब्ध हो सके। सम्पत्ति का उपार्जन सीमित भोग और लोक कल्याण हेतु होना चाहिए क्योंकि व्यक्ति सम्पत्ति की अपेक्षा अधिक श्रेश्ठ है। जिसप्रकार अद्वैत वेदान्त द िन में जीव व जगत को ब्रह्म मानकर अद्वैत की स्थापना की गयी है ठिक वैसे ही सबकुछ ई वर का मानकर सम्पत्ति को भी सबमें समान रूप से बाँटकर जीवन जीने का प्रयास करना चाहिए। यही पुराणों का मत है, जो एतत्कालीन समाज हेतु एक महत्वपूर्ण संदे ा है। गांधी का विकेन्द्रिकरण, प्लेटो का सम्पत्ति साम्यवाद, कार्ल मार्क्स का साम्यवाद इसी विचारधारा पर आधारित है। यह अध्ययन यह भी दिखाने का प्रयास करता है कि हिंदू उत्तराधिकार (सं ोधन) अधिनियम, 2005 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय ने स्त्री को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार प्रदान कर किस प्रकार से उसे सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है।

"© 2026 by the Author(s).Published by IJAR under CC BY 4.0. Unrestricted use allowed with credit to the author."

Introduction:-

पुराणों में प्रतिपादित दायभाग(सम्पत्ति–विभाजन) विषयक सिद्धान्त का विवेचन व्यवहार–खण्ड के अन्तर्गत किया गया है जो आंशिक परिवर्तन के साथ वर्तमान में भी सर्वमान्य है।व्यवहार शब्द से तात्पर्य है, किसी वस्तु पर स्वत्व (अपना अधिकार) हेतु विवाद। कात्यायनस्मृतिमें व्यवहार शब्द का वर्णन इस प्रकार है–वि नानार्थेऽव सन्देहे हरणं हार उच्यते।नाना सन्देहहरणाद् व्यवहार इति स्मृतः।।अर्थात् अनेक व्यक्तियों में कोई वस्तु किस व्यक्ति की है,इस सन्देह को हरण करने वाला भाव व्यवहारहै। इस प्रकार के विवाद के निराकरण हेतु ही विधि (कानून) निर्मित की जाती है। किसी व्यक्ति द्वारा न्याय के विरूद्ध आचरण करना और न्याय हेतु न्यायाधीश से आचरण करना व्यवहार का विषय है जिसके दो भाग हैं– (1) व्यवहार (स्वत्वाधिकार निर्णय) (2) विवाद (दण्डविधान)। व्यवहार विधान समाज की उन्नति हेतु अत्यन्त उपादेय, महत्त्वपूर्ण, सर्वजनोपयोगी एवं ग्राह्य है। इसी कारण यह संविधान का वि ोश भाग है। दायभाग प्राचीन काल से ही प्रासंगिक विषय रहा है और आज भी है। साहित्यिक दृष्टि से दाय शब्द का प्रयोग वैदिक काल से ही होता आ रहा है। ऋग्वेद[1] में प्रयुक्त 'श्रमस्यदायं विभजन्त्योः' में दाय का अर्थ भाग अथवा पुरस्कार है। तैत्तिरीय संहिता[2] एवं ब्राह्मणग्रंथों में यह पैतृक सम्पत्ति या केवल सम्पत्ति के अर्थ में प्रयुक्त है। वैदिक साहित्य में प्रयुक्त दायाद (सहअंशग्राही अर्थात् अपने साथ धन का भाग पाने वाला) शब्द भी दाय विषयक अर्थ का ही द्योतक है। वैदिककालीन समाज में कौटुम्बिक सत्ता पितृ प्रधान होने से पिता तथा पुत्र को माता और पुत्री की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त थे और पैतृक सम्पत्ति पर पुत्र का जन्मसिद्ध अधिकार था और वही उस सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता था।[3] पुत्रों में सम्पत्ति का समान विभाजन था, उदाहरण के लिये, ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण इन्द्र यज्ञ में हवि के अधिकारी थे और हवि प्राप्त न होने पर वह रूष्ट हो गये, तब अगस्त्य ऋषि ने कहा कि हे इन्द्र! मरूत तुम्हारे भाई हैं, उनके साथ हवि का उपभोग करो।[4] इस काल में स्त्रीधन के रूप में दान, उपहार व अलंकरण स्वरूप जो कन्या को दिया जाता था वह उसकी सम्पत्ति थी किन्तु पुत्री का पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार नहीं था। विवाह से पूर्व ही वह अपने पिता के घर में

Corresponding Author:-डॉ. प्रीति भार्मा, सहायक प्राध्यापक
Address:-द िन ाास्त्र विभाग, कोल्हान वि वविद्यालय, चाईबासा,झारखण्ड

अधिकार के साथ रह सकती थी। विवाह पश्चात् उसके अधिकार समाप्त हो जाते थे। योग्यता और आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये योग्य एवं ज्ञानवान पुत्र अर्थात् आज्ञाकारी तथा शिष्ट पुत्र ही सम्पत्ति का अधिकारी था और दुर्गुणी पुत्र सम्पत्ति के अल्प अं ा का अधिकारी था।[5]

सम्पत्ति विभाजन संबंधी हिन्दू विधि की मुख्यतः दो शाखाएँ हैं–(1) मिताक्षरा (2) दायभाग। इन दोनों में मौलिक मतभेद इस प्रश्न को लेकर है कि सम्पत्ति पर पुत्र का स्वामित्त्व किस प्रकार उत्पन्न होता है। मिताक्षरा अनुसार पुत्र के जन्म लेते ही पैतृक सम्पत्ति में उसका स्वत्व उत्पन्न हो जाता है जिसे जन्मस्वत्ववाद कहते हैं और दायभाग के अनुसार पुत्र का सम्पत्ति पर स्वामित्व पिता की मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न होता है जिसेउपरमस्वत्ववाद कहते हैं। मिताक्षरा में दाय (सम्पत्ति) पर उसके स्वामी के साथ सम्बन्ध होने से ही सम्बन्धित व्यक्ति का स्वामित्व स्थापित हो जाता है, उदाहरण के लिये, पुत्र का पिता की सम्पत्ति पर अधिकार।[6] जबकि दायभाग में पूर्व स्वामी के साथ सम्बन्ध होने से उसकी मृत्यु पर सम्पत्ति में स्वत्व प्राप्त होता है।[7]इस प्रकार दायभाग में दो बातें मुख्य हैं– दाता के स्वत्व की निवृत्ति एवं ग्रहणकर्त्ता के स्वत्व की उत्पत्ति। जबतक पिता जीवित होता है और दाय से उसके स्वत्व की निवृत्ति नहीं होती तबतक उस सम्पत्ति पर पुत्र के स्वत्व की उत्पत्ति नहीं हो सकती। स्वत्व वस्तु में और स्वामित्व व्यक्ति में निहित है। स्वत्व (सम्पत्ति) का अर्थ है, जो किसी का है और स्वामित्व का अर्थ है, अधिकारी (Ownership)। पिछले लगभग एक हजार वर्षों से पैतृक सम्पत्ति का विभाजनयाज्ञवल्क्य स्मृति पर आधारित मिताक्षरा और दायभाग इन्हीं दो ग्रंथों के आधार पर होता आ रहा है अर्थात् सम्पूर्ण भारत सम्पत्ति के अधिकारों की दृष्टि से इन्हीं दो सम्प्रदायों में विभक्त है। बंगाल तथा आसाम में दायभाग तथा शेष भारत में मिताक्षरा प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। वर्तमान में बंगाल के कुछ क्षेत्रों में मिताक्षरा के कानून उस विषयों पर मान्य हैं जिन विषयों पर दायभाग मूक है। दायभाग की अपेक्षा मिताक्षरा पद्धति अधिक प्रबल है इसलिये बंगाल और आसाम में दायभाग के अवर्णित विषयों पर मिताक्षरा के नियमों को ही प्रमुखता दी जाती है। मिताक्षरा के उपसम्प्रदाय हैं– वाराणसी, मिथिला, महाराष्ट्र या बम्बई, द्रविण या मद्रास, पंजाब। वाराणसी सम्प्रदाय का क्षेत्र समस्त उत्तरी भारत (अजमेर, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और उड़ीसा) है। इस शाखा का मुख्य ग्रंथ है, मित्रमिश्र द्वारा रचित वीरमित्रोदय। सभी उपसम्प्रदाय मिताक्षरा में प्रतिपादित सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं। जीमूतवाहन द्वारा रचित ग्रंथ धर्मरत्न के तीन खण्डों में दायभाग तृतीय खण्ड है जिसमें दायविभाजन, उत्तराधिकारी एवं स्त्रीधन की विशद व्याख्या है। दायभाग में एकभाग स्वामित्व का सिद्धान्त मान्य नहीं है।

भोध प्रविधिः–

प्रस्तुत आलेख में वैदिक साहित्य और पुराणों के अनुसार मिताक्षरा और दायभाग को जानने के लिए वि लेशणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत विशयवस्तु प्राथमिक स्रोत के आधार पर एकत्रित कि गयी है, जो प्राचीन कालीन सम्पत्ति विभाजन के नियमों के सम्बन्ध में एक गहरी समझ विकसित करती है।

पुराणों में दायभागः–

दाय शब्द की व्युत्पत्ति 'दा' धातु से हुई है जिसका अर्थ है, जो दिया जाये (दान)।[8] दाय दो प्रकार का है– (1) जंगम (चल) (2) स्थावर (अचल)। स्थावर एवं जंगम सम्पत्ति जो माता–पिता के द्वारा कुल परम्परा से चली आ रही है, उसका पुत्रों में विभाजन दायभाग है। इसका वास्तविक अर्थ है, सम्बन्धियों (पिता, पितामह आदि) के धन का सम्बन्धियों (पुत्रों, पौत्रों आदि) में विभाजन, जिसका कारण है, मृत स्वामी से उनका सम्बन्ध। मिताक्षरा में दाय अप्रतिबन्ध और सप्रतिबन्ध दो प्रकार का है किन्तु दायभाग में दाय केवल सप्रतिबन्ध है अर्थात् स्वामी के न रहने पर ही किसी अन्य व्यक्ति को प्राप्त हो सकता ळें पुराणों में दायभाग का कथन वेद सम्मत है। इनमें वि ोश रूप से अग्निपुराण(अ0–256), वामनपुराण(सरोमाहात्म्य, अ0–35) और श्रीमद्भागवतमहापुराण में सम्पत्ति विभाजन का नियम मिताक्षरा के अनुसार न होकर दायभाग के अनुसार है जिसमें पुत्र पिता की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति तथा ऋण दोनों को समान भाग में विभाजित कर लेते थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् ही पैतृक सम्पत्ति पर पुत्रों का अधिकार था किन्तु साथ ही यह भी कहा गया है कि यदि पिता चाहे तो जीवित रहते हुये अपनी इच्छा से पुत्रों में सम्पत्ति का विभाजन कर सकता था और अपनी इच्छा से ज्येष्ठ पुत्र को सम्पत्ति का श्रेष्ठ भाग अथवा सबको समान अंश भी दे सकता था।पुत्रों में सम्पत्ति का विभाजन होने के साथ–साथ उनकी उन पत्नियों के लिये भी सम्पत्ति के समान विभाजन की बात की गयी है जिन्हें अपने पति अथवा श्वसुर से स्त्रीधन प्राप्त नहीं होता था।

सम्पत्ति विभाजन के नियमः–

दायभाग के अन्तर्गत सम्पत्ति विभाजन के नियम निम्न प्रकार हैं–

(1)पुराणों में कुल चौदह प्रकार के पुत्र बताये गये हैं, जो इस प्रकार हैं– (1) नियोगज (2) औरस (3) क्षेत्रज (4) गूढ़ज (5) कानीन (6) पौनर्भव (7) दत्तक पुत्र (8) विक्रीत (9) कृत्रिम (10) स्वयं दत्त (11) सहोढ़ज (12) अपविद्ध (13) पारशव (14) अपवित्र। इनमेंऔरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढ़ज, अपविद्ध इत्यादि छः पुत्र दायाद बान्धव हैं तथा कानीन, सहोढ़, विक्रीत (क्रीत), पौनर्भव, स्वयंदत्त और पारशव इत्यादि छः अदायाद बान्धव हैं।ये केवल नाम के पुत्र हैं। दायाद बान्धव ही पैतृक ऋण एवं सम्पत्ति के अधिकारी थे। दायाद और अदायाद सभी पुत्रों में पूर्व–पूर्व के अभाव में पश्चात् वाले पुत्र पिण्डदान और सम्पत्ति के अधिकारी थे। पारशव या दासी पुत्र पिता की इच्छानुसार उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों के सदृश सम्पत्ति के समान अंश का अधिकारी था। दासी पुत्र पिता की कोई अन्य संतान या कोई दौहित्र न होने पर उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति का अधिकारी था। पुत्रों में जो पुत्र धनोपार्जन के योग्य था और पितृधन का इच्छुक नहीं था वह सम्पत्ति के अल्प अंश का अधिकारी था। पुत्रों द्वारा पैतृक सम्पत्ति को व्यय किये बिना उपार्जित,मित्रों से या विवाह में प्राप्त धन पर दायादों का अधिकार नहीं थाकिन्तु पैतृक सम्पत्ति की लागत से अर्जित धन पर सबका समान अधिकार था। परम्परा में प्राप्त धन जो दूसरों के द्वारा अपहृत होता था और किसी पुत्र द्वारा उसे पुनः प्राप्त कर लिया जाता था तथा उसकी स्व विद्या (योग्यता) से अर्जित धन पर दायादों का अधिकार नहीं था। इस प्रकार पिता जीवित रहते जो धन जिस पुत्र को देता था, उसपर उसी का अधिकार था किन्तु पिता की मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति में माता भी समान अंश की अधिकारी हो जाती थी।

(2)पितामह से प्राप्त भूमि निबन्ध और सोना, चाँदी आदि द्रव्य में पिता और पुत्र दोनों का समान अधिकार था।

(3)सवर्ण पत्नियों से उत्पन्न पुत्रों में सम्पत्ति का विभाजन उसी सम्पत्ति से होता थाजो व्यय के पश्चात् शेष रह जाती थी अर्थात् पिता की सम्पत्ति में सर्वप्रथम पुत्रों का अधिकार था और उनके द्वारा व्यय के पश्चात् जो सम्पत्ति शेष रह जाती थी उसपर पुत्र के पुत्रों का अधिकारथा।

(4)ब्राह्मण पुरूश द्वारा क्रम ाः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि स्त्रियों से उत्पन्न किये गये पुत्रों में क्रमशः चार, तीन, दो, एक भाग; क्षत्रिय पुरूश द्वारा क्रम ाः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र स्त्री से उत्पन्न पुत्र क्रमशः तीन, दो, एक भाग और वैश्य पुरूश द्वारा क्रम ाः वैश्य और शूद्र वर्ण की स्त्री से उत्पन्न पुत्र क्रमशः दो और एक भाग का अधिकारी था।

(5)पैतृक सम्पत्ति के विभाजन के समय किसी पुत्र द्वारा चुराये गये धन का बाद में पता चलने पर उसकाविभाजन सभी पुत्रों में समान रूप सेकिया जाता था।

(6)वानप्रस्थ, संन्यासी तथा ब्रह्मचारी के सम्पत्ति का विभाजन क्रमशः आचार्य, सत्शिष्य, धर्मभ्राता और सहपाठी इत्यादि में होता था।

(7) संसृष्टि और सहोदर की सम्पत्ति विभाजन में संसृष्टि (दायादी विभाजन हो जाने के पश्चात् मित्रतावश पुनः अपनी–अपनी सम्पत्ति में परस्पर सम्पर्क स्थापित करने वाले भाई) का उत्तराधिकारी संसृष्टि और सहोदर भाई का उत्तराधिकारी सहोदर होता था। सहोदर संसृष्टि असहोदर संसृष्टि के सम्पत्ति

का अधिकारी नहीं था। सहोदर असंसृष्टि होने पर भी सम्पत्ति का अधिकारी था किन्तु माता से उत्पन्न होने वाला असंसृष्टि सम्पत्ति का अधिकारी नहीं माना जाता था।

स्त्रीधनः–

स्त्रीधन का सामान्य अर्थ स्त्री की उस सम्पत्ति से है जिसपर उसका पूर्ण स्वामित्वहो। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम गौतम ने किया।[9] पिता, पति, भाई, विवाह तथा अन्य स्त्री से पति का विवाह होने पर प्राप्त सम्पत्ति स्त्रीधन है। स्त्री के पुत्रहीन होने पर उसे बन्धुओं से तथा विवाह के समय शुल्क रूप में प्राप्त धन उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके बान्धओं का माना जाता था। ब्राह्म, दैव, आर्य, प्रजापत्य इत्यादि चार विवाहों से विवाहित तथा सन्तानहीन स्त्री का धन उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पति का मान लिया जाता था। उसकी पुत्रियाँ होने पर उसकी मृत्यु के पश्चात् धन पुत्रियों का होता था। माता की सम्पत्ति से ऋण को निकालकर शेष धन पर ही पुत्रियों का अधिकार था और पुत्री के अभाव में सम्पत्ति पुत्रों की होती थी। असुर, गंधर्व, राक्षस और पिशाच विवाह से विवाहित स्त्री के पुत्रहीन होने पर उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका धन उसके माता–पिता का माना जाता था।स्त्रीधन में विशेष यह है कि जो धनएक बार कन्या को दे दिया जाता था, उसे पुनः लेने वाला दण्ड का भागी माना जाता था और व्यय किया हुआ सम्पूर्ण धन ब्याजसहित उसे पुनः लौटाना पड़ता था। सगाई के पश्चात् विवाह पूर्व कन्या की मृत्यु हो जाने पर वर पक्ष व कन्या पक्ष दोनों तरफ के व्यय धन को छोड़कर शेष धन (कन्या की सगाई के समय मिला धन) वापस लौटा दिया जाता था। दुर्भिक्ष, धर्मकृत्य, व्याधि और बन्धन में पड़ने पर पति द्वारा स्त्री से लिया गया धन पत्नी को वापस करने का प्रावधान नहीं था। पति द्वारा पुनर्विवाह कर लेने से पूर्व पत्नी के अपदस्थ हो जाने से और उसे स्त्री धन प्राप्त न होने से उसे (पूर्व पत्नी) दूसरी पत्नी से विवाह में व्यय हुये धन का आधा भाग देने का नियम था।

दाय के अनधिकारीः–

पतित, पतित की संतान, नपुंसक, पशुवत, उन्मत्त, जड़, अन्ध, असाध्य रोगी आदि दाय के अधिकारी नहीं थे किन्तु वे भरण–पोषण के अधिकारी थे। इनके उत्पन्न पुत्रों में औरस और क्षेत्रज पुत्र दोषहीन होने पर ही सम्पत्ति के अधिकारी माने जाते थे। दोषयुक्त व्यक्तियों की पुत्रियों का भरण–पोषण तबतक किया जाता था जबतक वे विवाहित नहीं हो जाती थीं। इनकी केवल पुत्रहीन और साध्वी पत्नियाँ ही परिवार में भरण–पोषण की अधिकारी थीं किन्तु जो पत्नियाँ व्यभिचारिणी तथा अपने पति के प्रति प्रतिकूल होती थीं, वे दाय और भरण–पोषण दोनों में से किसी की अधिकारी नहीं थीं।

स्वत्व प्राप्ति के स्रोतः–

स्वत्व प्राप्ति के मुख्यतः तीन स्रोत थे– (1) दान में प्राप्त सम्पत्ति (2) युद्ध में प्राप्त सम्पत्ति (3) प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त सम्पत्ति।दान, युद्ध, कृषि और गो–रक्षा तथासेवा आदि चातुर्वर्ण्यों हेतु स्वत्व प्राप्ति के स्रोत थे।[10]पुराणों में निन्दित कर्मों से उपार्जित धन हेतु प्रायश्चित्त स्वरूप कठोर व्रतों का कथन हैकिन्तु आपद्काल में व्यक्ति निन्दित कर्म भी कर सकता था।

उपर्युक्त सभी स्वत्व पुराणों के अनुसारमुख्यतः सामान्य और विशिष्ट दो स्वत्वों में विभक्त हैं। इनमें उत्तराधिकार, स्नेहवश प्राप्त उपहार, विवाह में वधु के साथ प्राप्त भेंट आदि स्वत्व के सामान्य स्रोत हैं। चारों वर्णों में ब्राह्मणों को प्राप्त भेंट, पौरिहित्य वृत्ति से प्राप्त धन तथा गुरु दक्षिणा; क्षत्रियों के विविध कर, युद्ध में विजित सामग्री तथा दण्ड स्वरूप प्राप्त सम्पत्ति; वैश्यों की कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य लाभ तथा शूद्रों द्वारा तीन वर्णों की सेवा से प्राप्त धन विशिष्ट स्वत्व हैं। स्वत्वों में प्रथम विशिष्ट स्रोत परिग्रह है जिसपर किसी का स्वामित्व नहीं था, जैसे– तृण, जल, काष्ठ आदि को जंगल से ग्रहण करना। चारों वर्णों हेतु निर्धारित धर्मों के अनुसार सम्पत्ति का उपार्जन कर स्वत्व की प्राप्ति पुराण विहित है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि स्ववर्ण धर्म की अपेक्षा अन्य वर्ण की वृत्ति से धनोपार्जन करने पर स्वत्व की प्राप्ति नहीं होती थी अथवा इस प्रकार का स्वत्व अवैध माना जाता था, उदाहरण के लिये, ब्राह्मण वर्ण द्वारा वैश्य वृत्ति अपनाकर कृषि कार्य द्वारा उपजाये गये अन्न का स्वत्व।

विभाजित दाय हेतु प्रमाणः–

पिता द्वारा पुत्रों में विभाजित दाय हेतु प्रमाण भी दिये गये हैं। किसी व्यक्ति द्वारा विभाजन छिपाने पर या न बताने पर या विभाजन से इंकार करने पर उसके परिचय के लोग, बन्धु, लेख तथा विभाजित घर और भवेत(ब्राह्मण) इसमें प्रमाण माने जाते थे।

परिचर्चाः–

उपर्युक्त विवरण से स्पश्ट होता है कि दायभाग परिवार और समाज में सम्पत्ति विभाजन की एक महत्वपूर्ण विधि है किन्तु इसमें पिता की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति का विभाजन पुत्रों में होने से यह सम्पत्तिगत विवाद का कारण भी है इसलिये मिताक्षरा के सम्पत्ति सम्बन्धी नियम समाज में अधिक कारगर हैं जिसमें पिता के जीवित रहते ही सम्पत्ति का पुत्रों में विभाजन हो जाने से भविष्य में सम्पत्तिगत विवाद की संभावना नहीं रहती। यह स्त्रीधन के नियमों की चर्चा करते हुए उन्हेंतत्कालीन समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान तो दिलाता है किन्तु पिता की सम्पत्ति में अधिकार से वंचित रखता है।समाज में आज भी स्त्रियों को प्रायः इस अधिकार से वंचित रखा जाता है, जिसे ध्यान में रखते हुये सर्वोच्च न्यायालय ने हिंदू उत्तराधिकार (सं ोधन) अधिनियम, 2005 के अन्तर्गत पैतृक सम्पत्ति में पुत्रों के समान पुत्रियों को भी एकसमान सहदायिक अधिकार प्रदान किया। इसके अन्तर्गत स्त्री को सम्पत्ति का पूर्ण स्वामित्व प्राप्त होता है और वह विभाजन का दावा कर सकती है। इसके अन्तर्गत वे सारी स्त्रियाँ सम्पत्ति का दावा कर सकती हैं जिनका जन्म 2005 के पूर्व और प चात् में हुआ हो। इनकी वैवाहिक स्थिति इनके पिता की सम्पत्ति में इनके हिस्से के अधिकार को प्रभावित नहीं करती है।

निश्कर्शः–

पुराण वेदों के उपवृहंण हैं और वैदिक समाज में प्रचलित दायभाग सम्बन्धि नियमों को यथावत् प्रस्तुत कर श्रम एवं दाय के सम्बन्ध में साम्यवाद की अवधारणा का प्रतिपादन करते हुए अपरिग्रह की अनु ंसा करते हैं और सम्पत्ति विभाजन हेतु एक दा ंनिक दृश्टि प्रदान करते हैं। श्रीमद्भागवतमहापुराण(1/7/14/8)के अनुसार ''यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्। अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।।''अर्थात् जितने से उदर की पूर्ति हो जाती है बस उतने ही धन पर प्राणियों का स्वत्व है अर्थात् उनका अधिकार है उससे अधिक को जो अपना मानता है वह चोर है और समाज के समक्ष दण्ड का भागी है अर्थात् व्यक्ति की आय की समस्त राशि पर उसका अधिकार न होकर उसके उतने ही भाग पर अधिकार है जितने से वह शरीर की पुष्टि कर जीवित रह सकता है, शेष आय पर दूसरों का अधिकार है। यह श्लोक अधिकार की वास्तविक मीमांसा करता है जो वर्तमान हेतु भी उपयोगी है। पुराणों में श्रम और दाय की अवधारणा उच्चतर लक्ष्य से सम्बन्धित है। श्रम किसी लाभ या मूल्य के लिए नहीं स्वधर्म पालन हेतु किया जाता है। दाय एक प्रन्यास (धरोहर) है जिसका अर्जन व्यक्ति करता है किन्तु उसका उपभोग समाज के कल्याण हेतु होता है। श्रीमद्भागवतमहापुराण[11] के अनुसार स्त्री–पुत्रादि सगे–सम्बन्धी एवं संसार के अन्य समस्त प्राणियों के तथा अपने स्वार्थ और भोग एक ही हैं उनमें अपने और पराये का भेद नहीं है, इस प्रकार का विचार द्रव्याद्वैत है। व्यक्ति सम्पत्ति का अर्जन और रक्षण करने के कारण उसका स्वामी है किन्तु उसकी

सम्पत्ति उसके उपभोग के साथ–साथ समाज कल्याण के लिये भी है। पौराणिक समाज संयम और इच्छा–विरोध तथा संतोष को सभ्यता का मापदण्ड मानता है। पुराणों का मानना है कि उपभोग से इच्छाओं की तृप्ति कभी नहीं होती वह निरन्तर बढ़ती जाती है इसलिए उनपर अंकुश लगाना ही मानव का वास्तविक स्वरूप है। इनमें सम्पत्ति आधारित सामाजिक स्वामित्व और व्यक्तिगत स्वामित्व को महत्त्व देते हुये सम्पत्ति के उपभोग की सही दिशा का निर्धारण है। धन आवश्यक है किन्तु उसके प्रति अत्यधिक आसक्ति तथा उससे असीमित भोग की कामना व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन में असन्तोष और सामाजिक जीवन में विघटन, विषमता और क्षोभ उत्पन्न करती है। व्यक्ति सम्पत्ति से ऊपर है, सम्पत्ति का उपार्जन सीमित भोग और लोक कल्याण हेतु हो यही पुराणों का निर्दे ा है। जहाँ पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों का मत है कि 'जो अर्जन करेगा वही उपभोग करेगा', वहीं पुराणों का मत है कि व्यक्ति अधिकारों के साथ नहीं ऋणों के साथ जन्म लेता है और ऋणों से मुक्ति हेतु ही वह संसार में श्रम और स्वधर्म का पालन करता है। अतः पुराणों में सबकुछ ईश्वर का मानकर अद्वैत की स्थापना करते हुये श्रम और सम्पत्ति को भी सबमें समान रूप से विभाजित किया गया है, उसपर किसी व्यक्ति का एकाधिकार नहीं है।

सन्दर्भ–सूचीः–

1.ऋग्वेद, 10/114/10
2. मनुः पुत्रेभ्यो दायंव्यभजत्। तैत्तिरीयसंहिता, 3/1/9/4; तस्माद्यः पुत्राणां दायं धनतममिवोपैति तं मन्यते यमेवेदं भविष्यतीति। तैत्तिरीय ब्राह्मण, 16/4/3–4
3. ईशा न्यासः पितृ वित्तस्य रायो। ऋग्वेद, 1/73/9
4. किंन इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरूतस्तव। तेभिः कल्पस्व साधु या मानः समरणे वधीः।। ऋग्वेद, 1/170/2
5. आ नस्तुजं रयिं भराशं न प्रतिजानते। ऋग्वेद, 3/45/4
6. याज्ञवल्क्यस्मृति की अवतरणिका, 2/114
7. दायभाग, 1/3–4
8. दायभाग, 1/4–5
9. गौतम धर्मसूत्र, 28/22
10. स्वामी रिक्थक्रय संविभाग परिग्रहाधिगमेषु ब्राह्मण स्याधिकं लब्धं क्षत्रियस्यविजितं निर्दिष्टं वैश्यशूद्रयोः।। गौतम धर्मसूत्र, 10/39–42
11. आत्मजायासुता दीनामन्येशां सर्वदेहिनाम्। यत् स्वार्थकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतं तदुच्यते।। श्रीमद्भागवतमहापुराण, 1/7/15/65